Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 GISRRJ | Volume 5 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

मेवाड़ के संस्कृत–शिलालेखों का मूल्यांकन

डॉ० मधुबाला जैन
अतिथि व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय मावली, उदयपुर, राजस्थान।

Article Info
Volume 5, Issue 3
Page Number : 21-33
Publication Issue :
May-June-2022
Article History
Accepted : 05 June 2022
Published : 15 June 2022

शोध सारांश– सांस्कृतिक विकास एवं समृद्धि हेतु शिल्प, वास्तुकला, साहित्य एवं कला ने मेवाड़ को कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ, राणकपुर के जैन मन्दिर, सूर्य–मंदिर जहाँ शिल्प के बेजोड़ नमूने हैं वहीं सैन्य स्थापत्य कला में कुंभलगढ़ का कोई सानी नहीं है।

मुख्य शब्द– मेवाड़, संस्कृत, शिलालेख, मूल्यांकन, साहित्य, सांस्कृतिक, राजस्थान।

राजस्थान इतिहास उज्ज्वल और गौरवमय रहा है। यह प्रदेश वीरत्व एवं शौर्य की क्रीडास्थली रहा है लेकिन जिन गुणों ने इसके इतिहास को गौरवान्वित किया है तथा इसे अमरत्व प्रदान किया है, वे मात्र वीरत्व एवं शौर्य के गुण ही नहीं है, अपितु उनके प्रेरक वे आदर्श एवं जीवनमूल्य हैं, जिन्होंने उनकी वीरता को एक अनूठी गरिमा और महिमा से मंडित किया। इसी राजस्थान के मेवाड़ प्रान्त की गौरवमयी परम्परा ने राजस्थान की धरती को महिमा–मंडित किया है।

वीर–प्रसविनी मेवाड़ की भूमि मात्र शौर्य, बलिदान, त्याग और देशानुराग की स्थली ही नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति की पोषक और संरक्षक भी रही है। मातृ–भूमि की रक्षा के लिए आत्माहुति देने के साथ–साथ संस्कृति एवं धर्म की रक्षा करने की एक दीर्घकालीन परम्परा मेवाड़ के इतिहास में दिखाई देती है। राष्ट्रीय संस्कृति के मूलमन्त्र 'शस्त्रेण रक्षितः राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।' का पूर्णतः पालन मेवाड़–प्रदेश ने किया।

संस्कृत शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु प्रदेश में अनेक महाराणाओं ने समय–समय पर विद्वानों को प्रश्रय एवं अनुदान देकर प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप संस्कृत साहित्य के अध्ययन के प्रति लोगों में अनुराग उत्पन्न हुआ। यद्यपि संस्कृत सर्वमान्य भाषा तो नहीं बन सकी तथापि अनेक इच्छुक लोगों को संस्कृत–साहित्य के अध्ययन के प्रति रूचि जागृत हुई। अतः एक ओर परम्परागत वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य का इस क्षेत्र में प्रचार हुआ जिससे प्राचीन साहित्यिक धरोहर को अक्षुण्ण रखा जा सका तथा दूसरी ओर संस्कृत में कतिपय मौलिक रचनाओं का सृजन भी हो सका। मेवाड़ के लगभग सभी महाराणाओं ने संस्कृत साहित्य की प्रगति में यथासम्भव योगदान दिया। मेवाड़ प्रदेश में अनेक उत्कृष्ट प्रशस्तिकार तथा कवि हुए जिन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत में गद्य और पद्यों द्वारा सृजित की। प्रशस्ति रचनाओं द्वारा मेवाड़ के धर्मानुष्ठान एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता रहा है। मेवाड़ के प्रशस्तिकारों ने न केवल संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा बढ़ाई अपितु उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा एक नई प्ररेणा भी विकसित की जो भविष्य

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

के साहित्यकारों के लिए मार्गदर्शक बनी। मेवाड़ के इन शिलालेखों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक वंशावलियाँ दी गई है जिससे मेवाड़ के प्राचीन महाराणाओं के वंशक्रम के बारे में ज्ञान होता है। तत्कालीन शासक, उसके राज्यकाल तथा उसकी उपलब्धियों के बारे में पता चलता है। उदाहरण के लिए रणछोड़ भट्ट द्वारा रचित राजप्रशस्ति के प्रारम्भ के पाँच सर्गों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक वंशावली दी गई है। इसमें कवि ने महाराणाओं से संबंधित घटनाओं, रचनात्मक कार्यों, तथ्यों का संवत्, तिथि, वार आदि देते हुए प्रमाणिकता के साथ वर्णन किया है। इस प्रकार ये शिलालेख ऐतिहासिकता को भी संतुष्ट करते है।

मेवाड़ के इन शिलालेखों से तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का ज्ञान होता है। सम्पूर्ण शासन का सर्वोपरि स्वयं राजा होता था जो राज, महाराज, परमभट्टारक, महाराजाधिराज आदि विरूदों से सम्बोधित होता था। राजा प्रजा के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन के नेता थे। वे प्रजा के संरक्षक होते थे जो शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करते थे। गुहिलवंशीय शील के राज्य में अन्य भागों से व्यापारी आकर उसकी जनप्रियता के कारण आकर बसे थे। शील को उसके प्रशस्तिकार ने शत्रुओं की जीतने वाला देव, ब्राह्मण और गुरूजनों का आनन्द देने वाला कहा है। इसके साथ–साथ उसे पृथ्वी का विजेता भी माना है।[1] इन राजनैतिक आचार–नियमों के अतिरिक्त इस युग के शासकों के कर्त्तव्यों में दुष्टों को दण्ड देना, धर्म की रक्षा करना, प्रजा पालन करना, युद्ध में सैन्य–संचालन करना, न्याय वितरण करना, जनोपयोगी कार्यों का सम्पादन करवाना, सार्वजनिक उत्सवों में भाग लेना आदि भी सम्मिलित थे। आहड़ के हस्तिमाला मंदिर की सीढ़ी पर लगे शिलालेख में शुचिवर्मा को मर्यादा पालन करने वाला, दानी और शत्रुओं को नष्ट करने वाला शासक कहा है जो राजा के सम्बन्ध में ऊपर बताए हुए कर्त्तव्यों की ओर संकेत करता है।[2]

मेवाड़ के महाराणाओं में प्रायः धार्मिक सहिष्णुता प्रचलित थी। बप्पा रावल को शिव की कृपा एवं शैवमतानुयायी हारित राशि के आशीर्वाद से मेवाड़ का राज्य प्राप्त हुआ था अतएव उसके वंशज शैव मतानुयायी हुए, परन्तु उन्होंने कभी धार्मिक कट्टरता का परिचय नहीं दिया। जिससे अन्य धार्मिक विश्वासों को भी मेवाड़ में फलने–फूलने का अवसर मिला। मेवाड़ की धरा पर शैव, वैष्णव, लकुलीश सम्प्रदाय, मातृ–शक्ति, तथा जैन मंदिरों की स्थिति से हमें यहाँ के महाराणाओं का सर्वधर्म समभाव की नीति का पता चलता है। आहड़ के जैन मंदिर को देवकुलिका के लेख में शक्तिकुमार 'जैन धर्म' के प्रति उदार दिखाई देता है।[3] सारणेश्वर मंदिर के लेख में राजा अल्लट द्वारा आहड़ में विष्णु के अवतार वराह भगवान का विशाल मंदिर बनवाकर अपनी धार्मिक उदारता को प्रदर्शित किया था, साथ ही मंदिर के निर्वाह के लिए उसने 'गोष्ठिको' की नियुक्ति भी की थी तथा करों की व्यवस्था का निर्धारण भी किया था।[4]

इन प्राचीन मंदिरों के अतिरिक्त वि.सं. 718 वर्ष में कुंडा ग्राम की प्रशस्ति में श्रीबन्ध की पत्नी यशोमती द्वारा विष्णु मंदिर, संवत् 1708 वर्ष में जगत्सिंह प्रथम ने जगदीश मंदिर, संवत् 1774 वर्ष में संग्राम सिंह के शासनकाल में महाराव सुरतान सिंह ने बेदला गांव में विष्णु मंदिर आदि बनवाए। वि.सं. 1028 वर्ष में वेदांगमुनि ने एकलिंगजी के स्थान में नाथों के मठ पर लकुलीश का मंदिर बनवाया। विसं. 1485 वर्ष में चित्तौड़ की महासतियों में महाराणा मोकल ने समिद्धेश्वर महादेव की प्रतिष्ठा की। वि.सं. 1775 वर्ष में संग्रामसिंह की राजमाता देवकुमारिका ने सीसारमा गाँव में वैद्यनाथ महादेव का मंदिर बनवाया। वि.सं. 1226 वर्ष में श्रेष्ठी लोल्लक ने बीजोलिया ग्राम में पार्श्वनाथ जिनेश्वर का मंदिर बनवाया। वि.सं. 1478 वर्ष में महाराणा मोकल के शासनकाल में जावर नामक ग्राम में पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया गया। वि.सं. 1496 वर्ष में महाराणा कुंभकर्ण ने राणकपुर जैन मंदिर में जिसे त्रिलोक्यदीपक जिनालय कहा जाता है, उसमें ऋषभदेव की चतुर्मुखी प्रतिमा स्थापित की। वि.स. 1819 वर्ष में महाराणा श्री अरिसिंह के शासनकाल में शाह कपूरचन्द

ने उदयपुर के हाथीपोल दरवाजे के बाहर चौगान के पास पद्मनाथ तीर्थंकर का मंदिर बनवाया। इस प्रकार विभिन्न धर्मों के प्रति मेवाड़ के शासकों की सहिष्णुता थी।

राजा के पद के बाद युवराज या महाराजकुमार का स्थान शासन में बड़े महत्व का था। बहुविवाह की परम्परा के कारण राजाओं के अनेक राजकुमार होते थे, अतएव इनमें से एक को उत्तराधिकारी चुन लेना आवश्यक होता था। राजा बहुधा अपने जीवनकाल में ही उत्तराधिकारी बना लिया करते थे जिससे वे युद्ध और शान्ति के समय राजा के सहायक बने रहें और पीछे से उत्तराधिकार की समस्या न उपस्थित हो। कभी–कभी राजा किसी विशेष कारणों से अपने जीवनकाल में ही राज्य–काल से विरक्ति प्राप्त कर शासन का भार राजकुमार को दे दिया करता था। बापा का राज्य छोड़कर सन्यास लेना और खुम्माण को राज्य सुपुर्द करना प्रसिद्ध ही है।[5]

मेवाड़ की शासन–व्यवस्था में मन्त्रियों और उच्चाधिकारियों का राज्य व्यवस्था में विशेष स्थान था। राजा इन्हें अपनी इच्छा से नियुक्त करता था और हटा देता था परन्तु विशेष रूप से जो मंत्री जनहित सम्पादन का कार्य करने में उपयुक्त थे उनका पद पितृ–परम्परा से चलता रहता था। वैसे तो यह आवश्यक नहीं था कि सदैव राजा इन मंत्रियों की सलाह मानने को बाध्य हो, परन्तु वह बहुधा योग्य मंत्रियों का सम्मान करता था। महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के मंत्रियों में वरिष्ठ धर्मात्मा बिहारीदास हुए जो सर्वाधिकारी पद पर नियुक्त किए गए थे। शास्त्र के जानकार होने के साथ ही सत्य और धर्म के द्वारा ईमानदारी को बीस को बीस ही करते थे। बिहारीदास राजा की अनुमति से दान करते थे। बिहारीदास के मंत्रियों में मुख्य होने पर संग्रामसिंह राजा के वशिष्ठ होने पर दोनों में अनुकूलता प्राप्त हुई।[6] अमात्य के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक पदों की जानकारी भी इन शिलालेखों से प्राप्त होती है। सारणेश्वर मंदिर के शिलालेख में सान्धिविग्रहिक एवं अक्षपटलिक नामक अधिकारियों के बारे में भी जानकारी मिलती है। अल्लट के समय में सान्धिविग्रहिक के रूप में दुर्लभराज का उल्लेख मिलता है। जिसकी तुलना आज विदेश मंत्री से की जा सकती है। इसी शिलालेख में अल्लट द्वारा मयूर और समुद्र को अक्षपटलिक नियुक्त किया। इस पदाधिकारी का मुख्य कार्य राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखने का था।[7]

राज्य की आय के साधन में राजस्व व्यवस्था प्रमुख स्थान रखती थी। यह आय भूमि–कर, दण्ड, शुल्क और अन्य आवश्यक करों पर निर्भर थी इसके अतिरिक्त कृषि, पशुपालन एवं उद्योगों से भी आय होती थी। मेवाड़ में आने वाले विभिन्न देशों के व्यापारियों से विभिन्न प्रकार के कर के रूप में राशि ली जाती थी। सारणेश्वर मंदिर की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कर्णाटक, मध्यप्रदेश, लाट, टक (पंजाब का एक भूभाग) तथा अन्य स्थानों से आने वाले वणिकों के द्वारा दान देना निर्धारित था। यह दान मंदिरों की आवश्यक सामग्री और रख–रखाव में काम लिया जाता था। आहड़ को उच्च व्यापारिक केन्द्र बनवाना अल्लट की एक महान् उपलब्धि थी। मेवाड़ की आय का साधन यहाँ की खनिज उपलब्धता भी थी। जगन्नाथराय प्रशस्ति में कहा है कि मेवाड़ी राजाओं के राज्य में धरती खोदने पर पूर्णरूप से चाँदी निकली।[8] कर व्यवस्था तथा खनिज सम्पदा के अतिरिक्त यहाँ के महाराणाओं द्वारा युद्ध में जीते गए शत्रु–राजाओं से दण्ड–स्वरूप धन लिया जाता था जो राजकीय कोष में जाता था। महाराणा जगत्सिंह के प्रधान भागचन्द ने जब बांसवाड़ा पर विजय प्राप्त की तब रावल समरसिंह ने दण्ड–स्वरूप दो लाख रूपये देकर महाराणा की अधीनता स्वीकार की।[9] इस प्रकार शत्रु–राजाओं के दण्ड–स्वरूप लिए जाने वाले धन से भी राजस्व आय होती थी।

मेवाड़ के इन शिलालेखों में युद्ध–विजय एवं राज्य–विस्तार के वर्णनों की प्रधानता प्राप्त होती है। यहाँ के सूर्यवंशी महाराणाओं ने अपने प्रताप से शत्रु रूपी कीचड़ को सूखा दिया। गुहिल–पुत्र राजा भोज

के युद्ध के समय प्रयाण के समय घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूल अन्तरिक्ष में चली जाती है तब ऐसा लगता है जैसे बादल छा गए हो। राजा भोज के तेज दौड़ने वाले घोड़ों की आवाज सुनकर युवतियों के असहज हो जाने पर शुत्र जंगल में चले जाते हैं।[10] महाराणा राजसिंह की सेना के पास विद्यमान तोपों का वर्णन करते हुए लिखा है कि ये सुन्दर तोपें शत्रुओं का संहार करने वाली कलिकाएँ हैं। बगल में रखे हुए गोलों के बहाने इन्होंने मुण्ड–मालाएँ पहन रखी हैं। इन तोपों को मौत की दाढे, शत्रुओं के प्राणों का संचय करने वाली कंदराएँ तथा पाताल लोक के घड़ियाओं का वक्रमुख कहा है।[11] इस प्रकार मेवाड़ की सेना शक्ति सम्पन्न थी।

मेवाड़ के इन शिलालेखों से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के बारे में भी पता चलता है। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों के अतिरिक्त कायस्थ आदि का भी उदय हो गया था। व्यवहारिक रूप से वर्णों का बदलाव वर्गों के रूप में हो गया था यथा राजवर्ग, व्यापारी वर्ग, कृषक वर्ग, खेतिहर वर्ग, राज्याश्रित विद्वान वर्ग, निम्न वर्ग तथा साधुवर्ग आदि। धार्मिक कार्यों में संलग्न होने से ब्राह्मणों को यथोचित सम्मान मिला हुआ था। विभिन्न महाराणाओं ने अपने राज्याश्रित ब्राह्मण गुरूओं के प्रति सम्मान स्वरूप अनेक दान किए। महाराणा राजसिंह अश्वमेघ यज्ञ के समय अपने नवल नामक घोड़े पर अपने गुरू मधुसूदन को बिठाया तथा उसके आगे वे पैदल–पैदल चले।[12] विक्रम संवत् 1226 के बिजौलिया की पार्श्वनाथ प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वाक्पतिराज के वंशज कुंतपाल के बड़े भाई का पुत्र पृथ्वीराज ने स्वर्ण पर्वत का दान किया तथा स्वर्णादि दश दानों के समूह से तथा नगरदान आदि के द्वारा ब्राह्मणों को संतुष्ट किया। महाराणा मोकल के काल में ब्राह्मणों की दशा आर्थिक रूप से कमजोर होने पर इन्होंने कृषि कर्म अपना लिया तब महाराणा मोकल ने उन्हें कृषि–कार्य से हटाकर पुनः पूजा पाठ की ओर प्रेरित किया। उन्हें अंगों सहित वेद पढ़ाने की व्यवस्था की।[13]

वर्ण व्यवस्था में दूसरा स्थान क्षत्रिय का है। क्षत्रिय वर्ण का कर्म शत्रुओं से रक्षा करना तथा युद्ध करना था किन्तु कुंभाकालीन सभी लोग युद्ध के अभ्यस्त थे क्योंकि यह काल व्यक्तिगत शौर्यप्रदर्शन का था। सभी लोग देश की रक्षा के लिए मर मिटने पर तुले हुए थे। मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा क्षत्रियों के युद्ध में विजित होने पर अनेक उपहार दिये जाते थे। महाराणा जगत्सिंह ने भागचन्द द्वारा बांसवाड़ा विजय करने पर उसे हाथी–हथिनी तथा एक नया महल दिया तथा जीवन पर्यन्त प्रधान की पदवी दी।[14]

वैश्य वर्ण वस्तुओं का क्रय–विक्रय करते थे। पशुपालन, कृषि एवं व्यापार इनका प्रमुख कर्म था। विक्रम संवत् 1010 वर्ष में आहड़ व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। कर्नाटक, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं पंजाब से वणिक यहाँ व्यापार करने के लिए आते थे जिनसे यहाँ पर कर लिया जाता था।[15] इन वर्णों के अतिरिक्त मेवाड़ में कायस्थ वर्ग का भी वर्णन मिलता है। ताम्रपत्रों, शिलालेखों और अन्य पत्रों को लिखने का कार्य ये अधिकारी ही करते थे। सारणेश्वर मन्दिर की प्रशस्ति में पाल और वेल्लक नामक दो कायस्थों का उल्लेख हुआ है। कायस्थ एक जाति के रूप में विकसित हो चुकी थी।

मेवाड़ के शिलालेखों में पारिवारिक जीवन के भी दर्शन होते हैं। समाज में एकल तथा बहुविवाह प्रथा दोनों का प्रचलन था। पति और पत्नी की अनुकूलता ही परिवार के सुख एवं अभ्युदय का कारण होती है। गुहिलवंश में उत्पन्न श्रीबन्ध की पत्नी का वर्णन इसका अनुपम उदाहरण है– 'उसका नाम यशोमती था, वह उसकी पत्नी थी, प्रेम करने वाली यशोमती उत्पथ में जाने वाले चित्त को रोकती थी, विनय के कारण वह अरून्धती भी थी।'[16] मेवाड़ के महाराणाओं एवं समाज में बहुविवाह का प्रचलन था। मेवाड़ के हारित ऋषि के शिष्य द्विज बापा ने सैकड़ों राजाओं की पुत्रियों के साथ विवाह किया।[17] महाराणा कुंभा हमेशा नवीन

राजकन्याओं के साथ प्रतिदिन विवाह करता था। कुछ राजकन्याएँ वीरों द्वारा शत्रु –राजाओं को दण्डित कर प्राप्त करता था, कुछ राजकन्याएँ धन, गज, घोड़े देकर अपने साथ ले आता था, कुछ को युद्ध में हरणकर साथ ले आता था। इस प्रकार महाराणा कुंभा नवीन–नवीन राजकन्याओं से परिणय करता था।[18] मेवाड़ के राजवंशों में अपरिणिता प्रियाओं को रखने का भी प्रचलन था। महाराणा जगत्सिंह की अपरिणीता प्रिया (रखैल) से मोहनदास[19] तथा उपपत्नी से नारायणदास[20] उत्पन्न हुए। समाज में सती प्रथा का प्रचलन था। गुहिल वंश में महाराजा पद्मसिंह के पुत्र योगराज के छोटे भाई के वंशज बालाक के युद्ध में परलोक जाने पर उसकी पत्नी भोली विद्वानों के समक्ष सती हो गई।[21] मेवाड़ में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था ऐसा शिलालेखों से ज्ञात होता है। पुरूषों के समान 'श्री' लगाया जाता था। महाराणा कुंभा की पुत्री के लिए 'श्रीरमावर्णन' लिखा गया है।[22] पितृवंश के साथ–साथ मातृवंश का वर्णन भी इन शिलालेखों में मिलता है। संग्रामसिंह की माता देवकुमारिका के पितृवंश का वर्णन किया गया है।[23]जिससे स्पष्ट होता है कि मेवाड़ में स्त्रियों को भी प्रधानता दी गई थी। मेवाड़ में जहाँ स्त्रियाँ केवल गृहकार्य तक ही सीमित थी, उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं था। वहीं महाराणा कुंभा ने इस परम्परा को तोड़ा। रमा बाई को शिक्षित किया। रमा बाई ने अपनी संगीत परम्परा को आगे बढ़ाया।[24] महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह द्वारा खानखाना की स्त्रियों का अपहरण करने पर महाराणा प्रताप ने उन्हें वापस बहन–बेटी के समान संतुष्ट कर भेज दिया।[25] ये आदर्श भी हमें मेवाड़ के शिलालेखों में दृष्टिगत होते हैं जिसमें पराई स्त्री के प्रति सम्मान की भावना अभिव्यक्त होती है। परिवार में कोई भी धार्मिक कृत्य स्त्रियों के बिना पूर्ण नहीं होता था। महाराणा राजसिंह ने पत्नियों के वसनांचलों के साथ गठबंधन कर राजसमुद्र की परिक्रमा की थी।[26] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मेवाड़ में स्त्रियों को गृहलक्ष्मी और पूजनीय भी माना गया है। परिवार में माता–पिता की प्रधानता होती थी। माता–पिता की बुद्धि, क्षमता, कर्त्तव्यपरायणता, सदाचरण एवं धार्मिकता का प्रभाव सम्पूर्ण परिवार पर पड़ता था। माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र को अधिकार प्राप्त होते थे। पुत्रों के द्वारा ही पितृ–तर्पण कर्म किया जाता था। मेवाड़ के महाराणा लक्षसिंह ने गया को मुस्लिम शासकों के कर से मुक्त किया। पितरों को मुक्ति रूपी अमृत का पान कराया। उसके पुत्र मोकल में भी गया में पितरों की मुक्ति के लिए तर्पण किया। मोकल ने ऋणमोचन और पापमोचन तीर्थ पर कुण्ड का निर्माण करवाया।[27] पुत्र वही होता है जो अपने पितरों को ऋणों से मुक्त करता है, वही व्यक्ति ऋणरहित होता है। यही सोचकर महाराणा जवानसिंह ने अपने खर्चे पर आत्मीय लोगों का पिण्ड–दान दिया। उसके पुत्र सरदारसिंह ने भी पितरों की मुक्ति के लिए यात्राएँ की। जवानसिंह की प्रतिज्ञा को पूरा किया तथा गया में होने वाली क्रियाओं को किया। जवानसिंह के पौत्र स्वरूपसिंह ने भी अपने दादा की प्रतिज्ञा के अनुसार शराब को हाथ नहीं लगाया।[28] मेवाड़ की धरा पर केवल राजवर्ग ही नहीं अपितु सामान्य प्रजा भी उच्च आदर्शों को धारण करती थी। उदयपुर में महाराणा जगत्सिंह के शासन काल में झंझा नामक गुर्जर था जो धर्म की निष्ठा वाला तथा उदार था। उसका पुत्र नाथा नामक गुर्जर था जो अनाथों का बंधु, गुण–समूह का सागर था। उसी के वंश में उसका प्रपौत्र धायभाई मानजी दास था जिसके दान को प्राप्त करके, भिक्षा मांगने वाले लोग पुष्ट और संतुष्ट होते थे।[29] भीमसिंह की माता तथा महाराणा अरिसिंह की पत्नी बडारण रामप्यारी द्वारा मंदिर, बाड़ी, धर्मशाला तथा बावड़ी की प्रतिष्ठा के समय राजा की माता सेविकाएँ सहित अपनी बहू के इस उत्सव को देखकर प्रसन्न हुई, इसकों कहीं भार नहीं माना। बहू द्वारा किए गए खर्चों को व्यर्थ नहीं माना।[30] यह बात तत्कालीन सास–बहू के मधुर रिश्तों को उजागर करती है।

मेवाड़ के इन शिलालेखों के अनुसार धार्मिक जीवन तीन मुख्य धाराओं से प्रभावित था–वैदिक, पौराणिक और जैन। वैदिक अर्थ के प्रधान अंग यज्ञ, बलिदान, श्राद्ध आदि थे। यज्ञों में पशु मारे जाते थे जिनका निषेध उस समय के जैन ग्रन्थों में मिलता है। पौराणिक धर्मों में शिव, विष्णु, देवी की मान्यता थी। ब्राह्मणों को आदर से देखना सभी धर्मों का कर्त्तव्य था। मेवाड़ के शिलालेखों में चित्तौड़, आहड़, जावर, सीसारमा, उदयपुर, कुम्भलमेरू आदि कस्बों में कई शिव, विष्णु, महावीर, वराह आदि देव–देवियों के मंदिर बनाए गए थे। जगत् का देवी मंदिर, चित्तौड़ का सूर्य मंदिर, समिद्धेश्वर मंदिर, सीसारमा का वैद्यनाथ महादेव का मन्दिर, कुम्भलमेरू का मामादेव मन्दिर, कैलाशपुरी का एकलिंग जी मंदिर, उदयपुर का जगन्नाथराय मन्दिर, जावर का पार्श्वनाथ मंदिर, उदयपुर का सारणेश्वर महादेव का मंदिर, चीरवा का मंदिर तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता के द्योतक है। नागदा, चित्तौड़ आदि स्थानों से मिलने वाले कतिपय शिलालेख उस समय के पौराणिक आराध्य देवों की स्तुतियों से भरे पड़े हैं। तीर्थयात्रा करने की प्रथा का भी हमें इन शिलालेखों से पता चलता है। मेवाड़ में सभी सम्प्रदायों को विश्वास और पूजा–पद्धति की पूर्ण स्वतन्त्रता थी इसलिए अनेक जैन आचार्य शैव या वैष्णव मतावलम्बी राजाओं के राज्य में अपने धर्म का प्रचार करते थे। अनेक मंदिरों चाहे वे शिव के हो, विष्णु के हो या देवी के हो या महावीर के हो उन्हें शासकों द्वारा अनुदान प्राप्त होता था। शक्तिकुमार के 977 ई. के शिलालेखों में आहड़ के जैन मंदिर तथा सूर्य मंदिर के बनाए जाने का उल्लेख है।

मेवाड़ के शिलालेख उत्कृष्ट कोटि के साहित्य के निदर्शन है। इन शिलालेखों की भाषा संस्कृत एवं लोकभाषा है। विक्रम संवत् 8 वीं सदी का अपराजित का शिलालेख उस समय के संस्कृत साहित्य का विशुद्ध उदाहरण है। इस लेख की कविता बड़ी मनोहर है। कुटिल लिपि में लिखे गए लेखों में यह उत्कृष्ट शिल्प का उदाहरण है। नरवाहन के समय का 971 ई. का नाथों का लेख भी रचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसकी श्लोक बद्ध रचना वेदांगमुनि के कृपापात्र आम्रकवि ने की। मेवाड़ के शिलालेखों से यह पता चलता है कि मेवाड़ के संस्कृत गद्य और पद्य लिखने का स्तर बड़ा ऊँचा था और शिक्षा की प्रगति संतोषजनक थी। उस समय के राजा भी विद्या के वैभव से वंचित नहीं थे, जैसा कि नरवाहन को 977 ई. के शिलालेख में कलाओं का आधार और विद्या की वेदी कहा है।[31] श्री एकलिंग जी की प्रशस्ति में महाराणा कुंभा को गीतगोविन्द और संगीतशास्त्र नामक ग्रन्थों का रचयिता कहा है।[32] महाराणा कुंभा ने संगीत, शिल्पकला, काव्यशास्त्रादि का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने वेद, पुराण, ज्योतिष, व्याकरणादि विषयों का अध्ययन करते हुए स्वयं साहित्य रचना का कार्य किया। महाराणा कुंभा के समय अनेक विद्वानों, कलाकारों एवं कवि–कोविदों को प्रश्रय प्राप्त था। प्रख्यात शिल्पी सूत्रधार मंडन ने वास्तुशास्त्र और शिल्प विषयक अनेक बहुमूल्य रचनाएँ इनके आश्रय में ही की।

महाराणा कुम्भा ने चार नाटकों की रचना भी की थी, जिनका कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में केवल उल्लेख मात्र मिलता है। इसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि कुम्भा ने इन नाटकों में संस्कृत–भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं (महाराष्ट्री, कर्णाटकी और मेवाड़ी) का भी प्रयोग किया था।[33] इस प्रकार महाराणा कुम्भाकालीन साहित्यिक युग वास्तव में स्वर्णयुग था। मेवाड़ की महाराणा प्रताप के समय में राज्याश्रित कवि चक्रपाणि मिश्र ने विश्वल्लभ, मुहूर्तमाला एवं राज्याभिषेकपद्धति आदि ग्रन्थों की रचना की। महाराणा अमरसिंह के राज्याश्रित कवि जीवन्धर ने अमरसार नामक ग्रन्थ की रचना की। महाराणा जगत्सिंह के काल में कवि रघुनाथ पालीवाल ने जगत्सिंहकाव्यम् तथा पं श्री मोहनभट्ट ने जगत्सिंहाष्टक की रचना की जिसमें प्रशस्ति काव्य की परम्परानुसार महाराणा जगत्सिंह का आशीर्वादात्मक रूप में स्तुतिगान किया गया है। महाराणा

राजसिंह के काल में संस्कृत–साहित्य के क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई। इनके समय में वैदिक साहित्य, कर्मकाण्डीय साहित्य, पौराणिक साहित्य एवं विविध विषयक संस्कृत रचनाओं का अत्यधिक प्रचार रहा। महाराणा राजसिंह के राजकीय संरक्षण में प्राप्त कवियों ने अनेक काव्य–रचनाओं का सृजन कर अपने काव्य–कौशल का प्रदर्शन किया। महाराणा राजसिंह के दरबारी कवियों में प्रथम स्थान रणछोड़भट्ट का है। उनके द्वारा रचित राजप्रशस्ति महाकाव्य अत्यन्त प्रौढ़ रचना है, जिसका मुख्य विषय महाराणा राजसिंह की राजनैतिक उपलब्धियों और राजसमुद्र निर्माण कार्य का विशद वर्णन है। राजसिंह के दूसरे महत्वपूर्ण कवि सदाशिव नागर थे जिन्होंने राजरत्नाकर नामक काव्य की रचना की जो एक ऐतिहासिक काव्य है। महाराणा राजसिंह के काल में मुकुन्द ने राजसिंहाष्टक, पं. लालभट्ट ने राजसिंहप्रभोर्वर्णनम्, पं. जगन्नाथ पालीवाल ने राजपट्टाभिषेक–पद्धति की रचना की। महाराणा जयसिंह के समय में रणछोड़ भट्ट द्वारा जयसिंह प्रशस्ति नामक काव्य की रचना हुई। जिसमें जयसमन्द झील के निर्माण का वर्णन किया गया है। महाराणा राजसिंह के पौत्र एवं महाराणा जयसिंह के पुत्र अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल में रणछोड़ भट्ट द्वारा अमरकाव्यम्' नामक काव्य की रचना की गई। बैकुण्ठ व्यास नामक पालीवाल ब्राह्मण ने अमरसिंहाभिषेक नामक काव्य की रचना की। इन साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त अनेक धर्म–सम्प्रदायों यथा वैष्णव, शैव तथा जैन मतावलम्बियों के विद्वानों ने साहित्य सृजन किया। गोकुलचन्द्रमा की प्रशस्ति में महाराणा शंभुसिंह द्वारा विभिन्न ग्रन्थों की अलंकार युक्त टीका करवाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[34]

मेवाड़ के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ पर गुरूओं का समाज में उच्च स्थान था। विद्वानों को आचार्य, पण्डित, उपाध्याय, भट्ट, कविप्रवर आदि कहते थे। गुरू के सान्निध्य में बैठकर शिष्य वेद, धर्म, पुराण, ज्योतिष, गणित, साहित्य, व्याकरण आदि विषयों में ज्ञान प्राप्त करते थे। शिक्षा निःशुल्क होती थी और गुरू–शिष्य का सम्बन्ध घनिष्ठ रहता था। गुरू का शिष्य के चरित्र–निर्माण में पूरा हाथ रहता था। मेवाड़ के महाराणाओं ने विभिन्न गुरूओं के सान्निध्य में अनेक प्रकार की विद्याएँ ग्रहण की। इन शिक्षकों के भरण–पोषण का भार दानप्रिय जनता या राजाओं पर था जो दान और अग्रहार के गाँवों से उनके व्यय की व्यवस्था करते थे। कुंभकर्ण के पुत्र राजा रायमल्ल ने गोपाल भट्ट नामक गुरू को थूर नामक गाँव दिया जिसमें अच्छे अच्छे गन्ने उत्पन्न होते हैं, सुन्दर मूँग की माला उत्पन्न करने वाला पानी सुलभ है, शाली नामक चावल उत्पन्न होते हैं, अच्छे आम उत्पन्न होते हैं, और पानी में कमल खिलते हैं। रायमल्ल के गुरू गोपालभट्ट कामनापूर्ण यज्ञ करने वाले थे, जिसके स्वस्तिवाचन से सम्पदाएँ बढ़ती है, राज्य उन्नत होता है, आपदाएँ और शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं।[35]

महाराणा जगत्सिंह ने विद्वान् कृष्णभट्ट को भैंसड़ा नामक गाँव दिया। मधुसूदन शर्मा को आहड़ नामक ग्राम में दो हलवाह जमीन दी।[36] महाराणा राजसिंह ने बड़ी में जनासागर की प्रतिष्ठा के अवसर पर ब्राह्मण गरीबदास को गुणहंडा तथा देवपुरा नामक दो ग्राम प्रदान किए।[37]इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मेवाड़ में गुरूओं का स्थान सम्माननीय था।

मेवाड़ के इन शिलालेखों में महाराणाओं एवं प्रजाजनों द्वारा जनकल्याण हेतु अनेक बाँधों एवं जलाशयों का निर्माण करवाये जाने का वर्णन मिलता है। चित्तौड़ पर शासन करने वाले मौर्य शासकों के काल में मान नामक मौर्य राजा ने तालाब बनवाया जो मानसरोवर के नाम से प्रसिद्ध है।[38] महाराणा लाखा के समय पिछोली के तट पर पिछोला का निर्माण संभवतः किसी बनजारे ने करवाया। महाराणा लाखा के पुत्र मोकल ने ऋणमोचन, पापमोचन तीर्थ और सेतुमण्डन नामक सुन्दरकुण्ड का निमार्ण करवाया।[39] रावत बाघा नामक अपने भाई की मुक्ति के लिए नागदा में निर्मल जल वाले बाघेला नामक तालाब का निर्माण

करवाया।[40] मोकल की हत्या के बाद उनका पुत्र कुंभा मेवाड़ का शासक बना। महाराणा कुंभा का काल निर्माण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण काल था। जैसे शाहजहाँ के शासनकाल को मुगल काल का स्वर्णकाल कहा जाता है उसी प्रकार मेवाड़ में महाराणा कुंभा का काल स्वर्णकाल कहा जाता है। उसने 84 किले तथा अन्य निर्माण करवा कर मेवाड़ को महत्वपूर्ण प्रदेश बना दिया। कुंभा ने कुंभलमेरू दुर्ग में सात तालाब खुदवाये।[41] वर्द्धनपुर में तालाबों का निर्माण करवाया।[42] अपनी पुत्री रमाबाई के नाम से रामकुण्ड या रमाबाई के कुण्ड का निर्माण करवाया।[43]

कुंभा के पुत्र रायमल्ल ने रामा नामक तालाब का विस्तार किया तथा शंकर नामक महान् सरोवर को खुदवाया।[44] महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर बसाने के साथ ही उदयसागर सरोवर का निर्माण करवाया। तड़ाग की प्रतिष्ठा पर उसने छीतूभट्ट तथा उसके सहोदर लक्ष्मीनाथ को भूरवाड़ा नामक गाँव दान में दिया।[45]

महाराणा राजसिंह ने वि.स. 1725 में बड़ी नामक ग्राम में तड़ाग की प्रतिष्ठा करवाई तथा अपनी माता जनादे के नाम से इसका नाम जनासागर रखा। इसके निर्माण में 6 लाख 80 हजार रूपये व्यय हुए। तालाब की प्रतिष्ठा के अवसर पर पुरोहित को चित्तौड़ का गिलूंड तथा थामला का देवपुरा नामक गाँव दिया।[46] जनासागर की प्रतिष्ठा के दिन महाराणा राजसिंह की आज्ञा से राजकुमार जयसिंह ने रंगसर नामक तालाब की प्रतिष्ठा करवाई।[47] महाराणा राजसिंह का सबसे बड़ा योगदान गोमती नदी को बाँधकर कांकरोली के समीप राजसमन्द नामक तालाब का निर्माण है। महाराणा ने भी इस कार्य को इतना महत्त्वपूर्ण माना कि इस घटना को काव्यरूप में वर्णित करवाने के लिए दो कवियों को कार्य किया। महाराणा उदयसिंह के काल से निरन्तर जुड़े हुए तैलंगभट्ट परिवार के रणछोड़ भट्ट ने राजप्रशस्ति नाम से काव्य की रचना की।[48] इसे 25 शिलाओं पर शिलांकित करवा कर राजसमन्द की पाल पर लगवाया गया।[49] इसका प्रयास राजसिंह के मंत्री गरीबदास के संरक्षण में सदाशिव नागर ने राजरत्नाकर नामक काव्य की रचना की।

इन दोनों काव्यों में राजसमन्द झील के निर्माण की प्रक्रिया बड़े विस्तार से दी गई है। राजप्रशस्ति में सर्ग 9 से लेकर सर्ग 11 तक निर्माण की प्रक्रिया दी गई है। सर्ग 12 से लेकर सर्ग 22 तक राजसमुद्र की प्रतिष्ठा का वर्णन है। इसके निर्माण का कारण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि कुमार पद में राजसिंह जब विवाहार्थ जैसलमेर गया तो उसने धोयन्दा, सनवाड़, सिवाली, भिगावदा, पंसूर, खेड़ी, छापरखेड़ी, तासोल, मंडावर, भाण लुहाणा, बांसोल, गुठली, कांकरोली और मढ़ा गाँव की सीमा में तड़ाग निर्माण योग्य भूमि देखकर जलाशय बनाने का विचार किया। राज्य प्राप्त करने हेतु रूपनारायण के दर्शन हेतु उधर गया तो एक बार वह स्मृति पुनः हो आई और तालाब बनाने का विचार दृढ़ हुआ। इस हेतु दो बड़े पर्वतों के बीच गोमती नदी को रोककर महासेतु बनाने का प्रयास किया गया। पुरोहित गरीबदास ने शिलान्यास किया। इसकी प्रतिष्ठा एवं निर्माण में कुल एक करोड़ इक्यावन लाख, बहत्तर हजार, दो सौ तैंतीस रूपये, चार आने खर्च हुए।[50] महाराणा राजसिंह ने इसके पश्चात् इसका विधिवत् उत्सर्ग किया जिसमें अनेक महादान किए। इसके साथ ही महाराणा ने पर्वत पर राजमंदिर नामक महल एवं समीप ही राजनगर नामक पुर का निर्माण करवाया।[51] इतना ही नहीं महाराणा राजसिंह ने एकलिंग जी के समीप स्थित इन्द्रसरोवर का जीर्णोद्धार करवाया। महाराणा राजसिंह की रानी जोधपुरी जो राठौड़ रूपसिंह की पुत्री थी उसने महाराणा की आज्ञा से राजनगर में बावड़ी की प्रतिष्ठा की जिसके निर्माण में तीस हजार रूपये व्यय हुए।[52] महाराणा राजसिंह की आज्ञा से उनकी रानी रामरसदे ने देबारी में जया नामक बावड़ी का निर्माण करवाया जिसमें 24,000 रजत–मुद्राओं का व्यय हुआ।[53]

महाराणा राजसिंह के पुत्र महाराज कुमार जयसिंह ने जहाँ कुमारपद में रंगसागर और देवाली का तालाब बनवाया वहीं शासन–सूत्र संभालने के पश्चात् छप्पन क्षेत्र में गोतोड, पाटन, गामडी, शकुरेडिया, भटवाड़ा, नाक, डीगला, मालक, अधवाड़ा आदि 23 गाँवों की भूमि में तालाब बनाने की योजना बनाई। यहाँ भी मणियाल नामक पर्वत के दो नाकों के बीच में गोमती नदी को बाँधने का प्रयास किया गया। सेतु की लम्बाई 50 गज तथा ऊँचाई 51 गज है। तल में चौड़ाई 600 गज, आगे 50 और विस्तार में 50 गज हैं। इस पर महल, मंदिर और बुर्ज बनवाये गए। इसका वर्णन जयसिंह प्रशस्ति नामक अप्रकाशित काव्य में प्राप्त होता है। यह एशिया की मानव–निर्मित सबसे बड़ी झील मानी जाती है। महाराणा ने इसका नाम जयसमन्द, नगर का नाम जयनगर तथा प्रासाद का नाम जयप्रासाद रखा।[54] फतहसागर का निर्माण करवाया। जो आज भी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

इन विशाल सरोवरों के अतिरिक्त मेवाड़ में अनेक बावड़ियों का निर्माण भी हुआ है। महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय ने बड़ीपाल के पीछे नीलकंठ महादेव के पास बावड़ी का निर्माण करवाया।[55] संग्रामसिंह की माता देवकुमारी ने सीसारमा गाँव में मीठे जल का कुंड बनवाया।[56] जगत्सिंह द्वितीय के शासन काल में हरिवंश शर्मा ने वापी का निर्माण करवाया।[57] महाराणा जगत्सिंह द्वितीय के विजयराज्य में धायभाई मानजित् ने गोवर्धन विलास में कुंड का निर्माण करवाया।[58] महाराणा जगत्सिंह के विश्वासपात्र देवजीत् ने दिल्ली दरवाजे के पास वापी का निर्माण करवाया।[59]

महाराणा अरिसिंह तृतीय की रानी प्रभु बारातण ने बावड़ी का निर्माण किया।[60] महाराणा अरिसिंह तृतीय के शासनकाल में धायभाई रूपजीत् की पत्नी पूराबाई ने सालेड़ा ग्राम में बावड़ी का निर्माण करवाया।[61] महाराणा अरिसिंह के पुत्र महाराणा भीमसिंह के शासन काल में उनकी माता रामप्यारी जो बाइजीराज के नाम से विख्यात थी उसने बाड़ी में बावड़ी का निर्माण करवाया।[62]

इसके पश्चात् महाराणा स्वरूपसिंह ने स्वरूप सागर, गोवर्धन सागर तथा महाराणा फतहसिंह ने देवाली के पास फतहसागर का निर्माण करवाया।

मेवाड़ में स्थापत्य कला के प्रतीक मंदिरों और दुर्गों का निर्माण प्राचीन काल से ही होता रहा है। जो आज भी मेवाड़ की सांस्कृतिक अभ्युन्नति को प्रकट करती है। मेवाड़ के शिलालेखों में महाराणाओं द्वारा मंदिर निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा एवं मंदिर के जीर्णोद्धार तथा दुर्ग–निर्माण से सम्बन्धित अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

मेवाड़ के शासकों द्वारा सभी धर्मों की प्रति सहिष्णु होने के कारण यहाँ शैव, वैष्णव, जैन एवं शाक्त (देवी) सम्बन्धी मंदिरों का निर्माण हुआ। मंदिरों के निर्माण में अल्लट नामक राजा ने हिमालय के शिखर के समान ऊँचा मुरारि (विष्णु) का मन्दिर बनवाया।[63] लोलक नामक श्रेष्ठी ने बीजोलिया में पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया जो त्रिभुवन के आभूषण स्वरूप है। कीर्तिपूंज मन्दिर को देखकर देवता यह तर्क करते हैं कि क्या मंदिर सुमेरू पर्वत का शिखर है या हिमालय की चोटी है?[64] मेवाड़ के राजा तेजसिंह एवं उनकी रानी जयतल्ल देवी द्वारा चित्तौड़ में पार्श्वनाथ मंदिर बनाये जाने का उल्लेख है।[65]मेवाड़ के राजा समरसिंह ने आबू पर अचलेश्वर मंदिर का जीर्णोद्धार किया तथा मंदिर में ऊँचा स्वर्ण–दण्ड बनवाया।[66] महाराणा मोकल ने चित्तौड़ में समिद्धेश्वर महादेव का मंदिर बनवाया। राजा मोकल ने एक–एक पत्थर पर इतनी मूर्तियाँ बना दी है कि सभी प्रकार के कर्मों को करते हुए महल बना दिए हैं, प्रत्येक दिशा की ओर आकाश की सीमा तक फैलते हुए मंदिरों का निर्माण कर दिया।[67] महाराजा मोकल ने समिद्धेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया तथा मणि का तोरण बनवाया। उसने इस मंदिर में अनेक धातुओं से सुन्दर सिंह का निर्माण करवाया तथा विष्णु

के मंदिर में पक्षिराज गरूड़ का निर्माण करवाया।[68] महाराणा कुंभा ने रणकपुर में त्रैलोक्यदीपक नामक चतुर्मुख युगादिश्वर का मंदिर बनवाया।[69] कुंभा ने एकलिंग के मंदिर को उच्च तोरण से युक्त बनाया। ऊँची पताकाओं से उसने पुनः इस मंदिर को सुन्दर बनाया।[70] महाराणा कुंभा की पुत्री रमाबाई ने कुंभलमेरू पर्वत पर भगवान विष्णु का मंदिर बनवाया।[71] महाराणा जगत्सिंह ने उदयपुर में जगन्नाथराय मंदिर का निर्माण करवाया। सफेद वर्ण के ऊँचे इस विष्णु मंदिर पर रत्नों का घट सुशोभित होता है।[72] महाराणा राजसिंह ने श्रीनाथ जी एवं द्वारकाधीश की प्रतिमाओं को मुगल सम्राट औरंगजेब से सुरक्षा प्रदान कर क्रमशः नाथद्वारा और कांकरोली में शरण देकर प्रतिष्ठित किया।[73] महाराणा राजसिंह के पुत्र अरिसिंह ने अपनी माता की इच्छापूर्ति के लिए रामेश्वर मंदिर का निर्माण करवाया।[74] महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने बड़ीपाल के पीछे दक्षिणामूर्ति महादेव का निर्माण करवाया। महाराणा संग्रामसिंह की माता देवकुमारिका ने सीसारमा गाँव में वैद्यनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा की।[75] इस प्रकार मेवाड़ के महाराणाओं तथा विभिन्न धर्मावलम्बियों के द्वारा अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया गया जो आज भी अपने स्थापत्य एवं मूर्तिकला के द्वारा कलाविदों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।

दुर्ग–निर्माण प्राचीनकाल से होता रहा है। दुर्गों में गिरि–दुर्ग को श्रेष्ठ माना गया है। मेवाड़ के महाराणाओं ने अपने राज्य की रक्षा–नीति में दुर्गों के महत्व को समझकर मेवाड़ पर होने वाले आक्रमणों से रक्षा के लिए दुर्गों का निर्माण कराया। मेवाड़ में सर्वाधिक दुर्गों का निर्माण महाराणा कुंभा के द्वारा कराया गया। मेवाड़ के 84 दुर्गों में से 32 दुर्ग महाराणा कुंभा द्वारा बनाए गए हैं। महाराणा कुंभा द्वारा बनाए गए दुर्गों में कुंभलगढ़ दुर्ग, चित्तौड़ दुर्ग, अचलगढ़ दुर्ग एवं कीर्ति स्तम्भ प्रमुख है। कुंभलगढ़ दुर्ग मात्र मेवाड़ और राजस्थान का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के दुर्गों में दुर्ग–स्थापत्य एवं सैन्य–स्थापत्य की एक अनोखी रचना तथा विलक्षण स्थापत्य नीधि है। इस दुर्ग का निर्माण–कार्य महाराणा कुम्भा की राज्य–सभा के प्रमुख शिल्पी सूत्रधार मण्डन के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। समुद्र तल से 3568 फीट की ऊँचाई पर स्थित इस दुर्ग के लिए अबुल फजल ने लिखा है कि यह किला इतनी बुलन्दी पर बना हुआ है कि नीचे से ऊपर की ओर देखने पर सिर से पगड़ी गिर जाती है। कुंभलगढ़ चारों तरफ से कई मील लम्बी उन्नत एवं सुविस्तृत प्राचीर से परिवेष्ठित है। एकलिंग के मन्दिर की प्रशस्ति में कहा भी गया है–कुंभा कुंभलमेरू रूपी आकाश का रत्न था, बीच–बीच में पर्वत से आए झरनों से मनोहर जल से, ऊँचे विन्ध्यपर्वत को धारण किया। ऊँचे दुर्गों को दुर्ग की घाटी में चार दरवाजें से युक्त, प्राचीन दुर्ग को भली प्रकार से नया बनाते हुए, विशाल प्रवेश द्वार वाले दुर्ग को श्रेष्ठ विधाधरों द्वारा बनवाया गया।[76] यह दुर्ग शस्त्रागार, अन्नागार अश्वशाला, हस्तिशाला, भण्डार, राजप्रासाद, देवप्रसाद और जलाशयों आदि से सर्वथा सुविधापूर्ण है।

चित्तौड़ दुर्ग का ऐतिहासिक महत्त्व विश्व–प्रसिद्ध है। यह एक गिरि–दुर्ग हैं तथा धरातल से 500 फीट ऊँचा है। यह चारों ओर से समुद्र प्राचीर द्वारा सुरक्षित है। कीर्ति–स्तम्भ प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि महाराणा कुंभा ने चित्तौड़–दुर्ग को अनेक प्रकार से सुदृढ़ किया।[77] कुंभा ने इसमें सात दरवाजे बनवाये जिनमें रामपोल मुख्य है।[78]

महाराणा कुंभा ने मेवाड़ राज्य की राजधानी चित्तौड़ के किले पर राजमहलों के निकट एक स्तम्भ का निर्माण करवाया। यह स्तम्भ विजय–स्तम्भ, कीर्ति–स्तम्भ के नाम से जाना जाता है। कीर्ति–स्तम्भ शिल्प–स्थापत्य और मूर्तिकला की दृष्टि से सारे संसार में अद्वितीय है। यह विशाल स्तम्भ भीतर और बाहर दोनों ओर से अलंकृत है। यह 30 फीट लम्बे और इतने ही चौड़े आधार पर निर्मित है। इसकी ऊँचाई 122 फीट है। इसमें नौ मंजिल तथा 127 सीढ़ियाँ है। इस कीर्ति स्तम्भ पर अनेक प्रकार की मूर्तियाँ नामोल्लेख

सहित प्रतिष्ठित है।[79] इसमें अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ है जो महाराणा कुंभा को धर्म सहिष्णु तथा सम्यक् धर्म के उपासक के रूप में प्रतिष्ठित करती है। मेवाड़ के इन दुर्गों और कीर्ति–स्तम्भ के अतिरिक्त महाराणा कुंभा ने आबू पर्वत के ऊँचे शिखर पर अचलगढ़ दुर्ग का भी निर्माण करवाया। इस दुर्ग पर जाने के लिए सर्वप्रथम हनुमान पोल है। इसके पास ही सुरक्षा–सैनिकों के लिए निवास स्थान बने हुए हैं। दूसरे द्वार चम्पापोल के पास पार्श्वनाथ का जैन मंदिर है। अचलगढ़ के सबसे ऊपरी भाग में कुंभा के महल है। सावन–भादो नामक सरोवर है। महाराणा कुंभा द्वारा निर्मित अचलगढ़ के कुम्भ–स्वामी मंदिर के सामने एक सरोवर रामकुण्ड भी है।[80]

इन दुर्गों के अतिरिक्त महाराणा अमरसिंह द्वारा बनाये गए अमरविलास महल का कर्णसिंह ने जीर्णोद्धार करवाया।[81] महाराणा अमरसिंह ने अमरविलास नामक महल का निर्माण करवाया तथा तालाब के भीतर जगमन्दिर नामक महल बनाया मानो समुद्र के बीच चांदी के पहाड़ हो।[82]

इस प्रकार सांस्कृतिक विकास एवं समृद्धि हेतु शिल्प, वास्तुकला, साहित्य एवं कला ने मेवाड़ को कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ, राणकपुर के जैन मन्दिर, सूर्य–मंदिर जहाँ शिल्प के बेजोड़ नमूने हैं वहीं सैन्य स्थापत्य कला में कुंभलगढ़ का कोई सानी नहीं है।

संदर्भ–ग्रन्थ सूची

1. नागरी प्रचारणी पत्रिका, भाग–1, पृष्ठ 311–24
2. राजस्थान थ्रू द एजेस, पृष्ठ–313
3. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृष्ठ 130
4. वीरविनोद, भाग–1, पृष्ठ 380
5. एकलिंग महात्म्य, अध्याय–20, श्लोक 21–22
6. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव जी के मंदिर की प्रशस्ति, द्वितीय प्रकरण, श्लोक–66–69
7. सारणेश्वर महादेव मंदिर की प्रशस्ति, वीरविनोद भाग–1, पृष्ठ 380
8. जगन्नाथराय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–39
9. राजप्रशस्ति सर्ग 5/28
10. चित्तौड़ के महासती स्थान के दरवाजे की प्रशस्ति–श्लोक–16,17
11. राजप्रशस्ति सर्ग–7/3–4
12. वहीं सर्ग–6/40
13. कुंभलगढ़ प्रशस्ति, श्लोक–217
14. बेडवास सराय के पास बावड़ी की प्रशस्ति।
15. सारणेश्वर मंदिर की प्रशस्ति।
16. कुंडा ग्राम की प्रशस्ति।
17. एकलिंग जी मन्दिर में दक्षिणा द्वार के सामने दीवार में लगी प्रशस्ति–श्लोक–16
18. कुम्भलमेरू पर मामादेव के मन्दिर की प्रशस्ति की चतुर्थी पट्टिका–श्लोक–252
19. राजप्रशस्ति–सर्ग 5/24
20. वहीं, सर्ग 6/8

21. चिरवा गाँव के मन्दिर के दाहिनी ओर की प्रशस्ति–श्लोक–20
22. जावर की प्रशस्ति में श्रीरमावर्णन
23. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ महादेव मंदिर की प्रशस्ति–चतुर्थ प्रकरण–श्लोक–1
24. जावर की प्रशस्ति में श्रीरमावर्णन में श्लोक–1,2
25. राजप्रशस्ति–सर्ग 4/32
26. वहीं, सर्ग 16/6
27. कुम्भलमेरू पर मामादेव के मंदिर की प्रशस्ति के चौथे पाषाण की चतुर्थ पट्टिका–श्लोक–209, 219, 223
28. जगत्शिरोमणि के मन्दिर की प्रशस्ति–श्लोक–36,40,47
29. गोवर्धन विलास में मानजी धायभाई के कुंड की प्रशस्ति–श्लोक–4,5,8–10
30. उदयपुर में रामप्यारी की बाड़ी के मंदिर की प्रशस्ति–श्लोक–8
31. राजस्थान का इतिहास, मध्ययुग भाग–1 जी.एन.शर्मा पृष्ठ–121
32. श्री एकलिंग जी के निजमंदिर में दक्षिणाद्वार के सामने की दीवार में लगी हुई प्रशस्ति–श्लोक 59
33. कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति
34. गोकुलचन्द्रमा की प्रशस्ति, श्लोक–54
35. श्री एकलिंग जी के निजमंदिर में दक्षिणाद्वार के सामने की दीवार में लगी हुई प्रशस्ति–श्लोक 87,81
36. जगन्नाथ राय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक 118–119
37. राजप्रशस्ति–सर्ग 8/47–48
38. वीरविनोद भाग–1, पृष्ठ 378–380
39. वीरविनोद भाग–1,कुम्भलमेरू के मामादेव के मन्दिर की प्रशस्ति श्लोक–223
40. राजप्रशस्ति, सर्ग 4:10
41. वीरविनोद भाग–1, एकलिंग जी में दक्षिणाद्वार के सामने की प्रशस्ति श्लोक–51
42. वहीं, कुम्भलमेरू के मामादेव के मन्दिर की प्रशस्ति श्लोक–257
43. वीरविनोद भाग–2, जावर की प्रशस्ति
44. वीरविनोद भाग–1, एकलिंग जी में दक्षिणाद्वार के सामने की प्रशस्ति, श्लोक–74,75
45. राजप्रशस्ति, सर्ग 4:18,19
46. वहीं, सर्ग 8:47–49
47. वहीं, सर्ग 8:41, 42
48. राजप्रशस्ति, प्रत्येक सर्ग का अन्तिम श्लोक
49. वहीं, सर्ग 8:53
50. वहीं, भूमिका–पृष्ठ 35
51. वहीं, सर्ग 18:16
52. वहीं, सर्ग 24:11,12
53. वीर विनोद भाग–2, त्रिमुखी बावड़ी की प्रशस्ति–श्लोक–58,60
54. जयसिंह प्रशस्ति
55. वीर विनोद भाग–2, बड़ी पाल के पीछे दक्षिणामूर्ति में महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–8
56. वीर विनोद भाग–2, सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ मंदिर की प्रशस्ति का चौथा प्रकरण, श्लोक–29

57. वीर विनोद भाग–2, हरबेनजी के खुरे पर शिवालय की प्रशस्ति, श्लोक–25
58. वहीं, गोवर्धन विलास में मानजी, धायभाई के कुंड की प्रशस्ति, श्लोक–10
59. वहीं, दिल्ली दरवाजे के पास बाईजीराज के कुंड के दरवाजे के सामने पंचोलियों के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–28
60. वहीं, प्रभु बारातण की बाड़ी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–11
61. वहीं, मेवाड़ के सालेड़ा ग्राम में पूर्व दिशा वाली बावड़ी पर महादेव मन्दिर की प्रशस्ति
62. वहीं, उदयपुर के रामप्यारी की बाड़ी के मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक–13
63. सारणेश्वर महादेव की प्रशस्ति।
64. बिजौलिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की प्रशस्ति–श्लोक–80
65. चित्तौड़ में नौकोठा के पीछे महल के चौक में गड़े हुए स्तम्भ की प्रशस्ति
66. अचलेश्वर मंदिर के पास मठ में लगी प्रशस्ति, श्लोक 53, 54
67. चित्तौड़ के समिद्धेश्वर महादेव के मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–73
68. कुम्भलमेरू पर मामादेव मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–224–225
69. रणकपुर जैन मन्दिर की प्रशस्ति
70. कुम्भलमेरू पर मामादेव मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–240
71. जावर की प्रशस्ति, श्लोक–2
72. जगन्नाथ राय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक 7, 11
73. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग–2 पृष्ठ 547
74. रामेश्वर मंदिर की प्रशस्ति श्लोक–18
75. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–18
76. एकलिंग जी के मंदिर में दक्षिणाद्वार के सामने दीवार पर लगी प्रशस्ति, श्लोक 50
77. जी.एन.शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ 574
78. डॉ. डी. एन. शुक्ल, वास्तुशास्त्र भाग–1, पृष्ठ 259
79. डॉ. हर्षप्रभा–कुम्भाकालीन जैन साहित्य, पृष्ठ–39
80. वहीं, पृष्ठ–43
81. जगन्नाथ राय मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक 24
82. सीसारमा गाँव के वैद्यनाथ मंदिर की प्रशस्ति, श्लोक–44, 45